Peer Reviewed

ISSN (P) : 2321-290X ★ (E) 2349-980X

Vol.6 Issue.09 May (Part-1) 2019

RNI No. : UPBIL/2013/55327

Srinkhla Ek Shodhparak Vaicharik Patrika

Peer Reviewed / Refereed Journal

Indexed with Google scholar

Impact Factor

SJIF = 5.921 (2018)

GIF = 0.543 (2015)

IIJIF = 6.038 (2018)

UGC S.NO. 40880

Shrinkhla UGC approved listed

The Research Series

द्विभाषीय - मासिक

Shrinkhla

श्रृंखला

A Multi-Disciplinary International Journal

S.no	LIST	Page No
30	**भारत में राष्ट्रवाद का उदय एवं वर्तमान स्वरूप** शैफाली सुमन, सिकन्दराराऊ, हाथरस, भारत	H-135 to H-138
31	**पारिवारिक जीवन से निष्कासित वृद्ध विधवाओं की विविध स्वास्थ्य सम्बन्धी समस्याओं का अध्ययन** अंजली मलिक, नई दिल्ली, भारत	H-139 to H-142
32	**आधुनिक भारतीय परिवेश में दहेज़ प्रथा की समस्या एवं समाधान** अवधेश कुमार, गाजियाबाद, भारत	H-143 to H-145
33	**सिरमौर जनपद (हि0प्र0) शैक्षणिक विकास की स्थिति** रामचन्द्र शर्मा, श्रीनगर, भारत	H-146 to H-149
34	**जाम्भो जी का सामाजिक दर्शन : 1451–1536 ईस्वी** महेश कुमार दायमा, जयपुर, राजस्थान, भारत	H-150 to H-156
35	**दक्षिण भारत में ईसाई धर्म : आरम्भ एवं विकास** रमा गुप्ता, अतर्रा, बॉदा, भारत	H-157 to H-160
36	**जौनसार–बावर के समाज में 'खत व स्याणाचारी व्यवस्था' का ऐतिहासिक अध्ययन: भ्रासन–प्रबन्ध के वि[illegible]श सन्दर्भ में** टीका राम एवं जे0 सी0 जाशी, श्रीनगर, गढ़वाल, भारत	H-161 to H-166
37	**भारतीय संस्कृति और समाज (कथाकार – मृदुला गर्ग के साहित्य संदर्भ में)** प्रियंका अरोड़ा एवं राजेश कुमार शर्मा, अजमेर, भारत	H-167 to H-171
38	**21वीं शताब्दी के उपन्यासों में कुण्ठा और संत्रास (नारी पात्रों के विशेष सन्दर्भ में)** कविता चौहान, यमुनानगर, हरियाणा, भारत	H-172 to H-177
39	**वर्तमान समय में हिन्दी भाषा : 'दशा एवं दिशा'** सुशील कुमार, धारवाड़, कर्नाटक, भारत	H-178 to H-179
40	**हिन्दी सन्त कवियों की सामाजिक चेतना** संजय कुमार, सागर, म.प्र., भारत	H-180 to H-183
41	**नवीन सामाजिक संरचना के प्रबल हिमायती : निराला** अनुपमा सिंह, झारखण्ड, भारत	H-184 to H-187
42	**प्रथम साहित्यिक विदोह करने वाला जन कवि– बांकीदास आशिया** मनोहर सिंह चारण, उदयपुर, भारत	H-188 to H-192
43	**हिन्दी साहित्य में पर्यावरण चेतना: ''आधुनिक काल के परिप्रेक्ष्य ' में'** लाल सिंह किरार, गुना, भारत	H-193 to H-196
44	**मैत्रेयी पुष्पा के उपन्यासों में नारी विमर्श** शम्भुलाल मीना, दौसा, भारत .	H-197 toH-204
45	**पर्यावरण संरक्षण का चैतन्य–वैदिक ऋषियों की दृष्टि में** अनीता सेनगुप्ता, इलाहाबाद, भारत	H-205 to H-207
46	**साम्प्रदायिकता का संकट और विमर्श** विकास कुमार मिश्रा, यू.पी., भारत	H-208 to H-212
47	**नरेश मेहता के काव्य में श्रृंगार रस** शशि बाला रावत, अगस्त्यमुनि, रूद्रप्रयाग, भारत	H-213 to H-215

P: ISSN NO.: 2321-290X RNI : UPBIL/2013/55327 VOL-6* ISSUE-9*(Part-1) May- 2019
E: ISSN NO.: 2349-980X **Shrinkhla Ek Shodhparak Vaicharik Patrika**

हिन्दी सन्त कवियों की सामाजिक चेतना

संजय कुमार
शोधार्थी,
हिन्दी विभाग,
डॉ. हरीसिंह गौर विश्वविद्यालय,
सागर, म.प्र., भारत

चन्दा बैन
प्रोफेसर,
हिन्दी विभाग,
डॉ. हरीसिंह गौर विश्वविद्यालय,
सागर, म.प्र., भारत

सारांश

भक्ति साहित्य का उद्भव दक्षिण भारत में हुआ। भक्ति साहित्य से ही संत साहित्य का उद्भव हुआ। संत कवियों की वैचारिकी में हिन्दू धर्म के अहिंसावाद, मुस्लिम धर्म के एकेश्वरवाद, बौद्ध, सिद्ध, और नाथ आदि के मतों का मिश्रण दिखाई पड़ता है। संतों ने जो सामाजिक क्रांति की उसका प्रभाव तत्कालीन समाज पर पड़ा, जिसकी प्रासंगिकता वर्तमान समय में भी विद्यमान है। तत्कालीन समाज में जो बुराईयां थी, उसकी आलोचना करके इन निर्गुण संतों ने समाज में निर्गुण भक्ति के मार्ग का सन्देश दिया। भक्तिकालीन निर्गुण संत समाज अपने सीमित संसाधनों में जीवन–यापन करता रहा, कोई कपड़ा बुनता रहा, तो कोई जूतियाँ गांठता रहा, कोई बाल काटकर अपनी जीविका चलता रहा। किन्तु किसी ने भी राजनीतिक प्रश्रय स्वीकार नहीं किया और न ही राजनीतिक सत्ता के समक्ष नतमस्तक हुए। जबकि संतों का यह आन्दोलन नैसर्गिक रूप से अखिल भारतीय स्तर पर संचालित हो रहा था। मध्य भारत में संत रैदास, कबीर, पंजाब में गुरु नानक, महाराष्ट्र में नामदेव इत्यादि सामाजिक परिवर्तन की इस मशाल को उठाये हुए थे। वर्ण व्यवस्था आधारित समाज में केवल सत्ताधारी और उच्च वर्ग के समाज को ही भक्ति का अधिकार था, किन्तु निर्गुण भक्त संतों ने समाज के अंतिम व्यक्ति को भी यह अधिकार प्रदान करने का प्रयास किया। कुरीतियों, आडम्बरों के शोधन और सामाजिक परिवर्तन की दिशा में निर्गुण संत कवियों का बड़ा योगदान है।

मुख्य शब्द : निर्गुण भक्ति, संत साहित्य, मध्यकालीन समाज, सामाजिक चेतना।

प्रस्तावना

हिन्दी भक्ति साहित्य में भक्ति की दो धाराएँ प्रवाहित होती है एक राम–भक्ति काव्यधारा और दूसरी कृष्ण–भक्ति काव्यधारा। राम भक्ति काव्यधारा से दो शाखाएँ निकली एक निर्गुण तथा दूसरी सगुण। निर्गुण को ज्ञानमार्गी शाखा कहते हैं, सगुण को भक्तिमार्गी शाखा कहा जाता है। निर्गुण शाखा से भी दो शाखाएँ प्रवाहित हुई एक ज्ञानाश्रयी तथा दूसरी प्रेमाश्रयी। ज्ञानाश्रयी शाखा के प्रवर्तक–संत कवियों ने ज्ञान को महत्व दिया तथा प्रेमाश्रयी शाखा के कवियों ने प्रेम को महत्व दिया। इस प्रकार निर्गुण मार्गी संतों को ही संतकाव्य का प्रवर्तक कहा जाता है। निर्गुण सन्तों ने सामाजिक कुरीतियों, विषमताओं के खिलाफ जो आवाज उठाई उसे संत साहित्य की सामाजिक चेतना कहते हैं।

निर्गुण भक्ति काव्य परम्परा का आरम्भ संत कबीर से माना जाता है। संत कबीर से पहले जो निर्गुण काव्य परम्परा मिलती है, उसको दृढ़ आधार नहीं प्रदान किया गया। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने नामदेव तथा कबीर द्वारा प्रवर्तित धारा को निर्गुण ज्ञानाश्रायी शाखा की संज्ञा से अभिहित किया। हजारी प्रसाद द्विवेदी ने इसे 'निर्गुण भक्ति साहित्य' कहा। निर्गुण भक्ति धारा वेदादि और ब्राह्मणवाद का विरोध करता आया है। जिन धार्मिक सम्प्रदायों ने संत काव्य की दार्शनिक पृष्ठभूमि तैयार की उन सम्प्रदायों की साहित्यिक प्रवृत्तियों का समावेश संत काव्य में हो गया। संत काव्य पर बौद्ध धर्म का प्रभाव पड़ा तथा बौद्ध साहित्य संत साहित्य का प्रेरणादायक बन गया। बौद्ध धर्म से महायान और हीनयान सम्पद्रायों का आविर्भाव हुआ, महायान से मन्त्रयान और वज्रयान और इसी वज्रयान की तांत्रिक प्रक्रिया से नाथ सम्प्रदाय का उदय हुआ। इस प्रकार बौद्ध धर्म से लेकर नाथ सम्प्रदाय तक इस प्रक्रिया में जो जीवन तत्व उभरे, उन सबका समावेश संत काव्य में हो गया।

मध्यकाल संत काव्ययुग चेतना के परीक्षण काल का युग है। जब छोटे–छोटे अशक्त राज्यों में विभक्त भारत न केवल राजनैतिक दृष्टि से ही अपना महत्व खो बैठा था अपितु सामाजिक, धार्मिक एवं आर्थिक सभी दृष्टियों से आभाहीन सा प्रतीत होता है। तो यह कहा जा सकता है कि ''यह समय देश के सांस्कृतिक पराभाव का युग था। राजनैतिक क्षेत्र में विदेशी आक्रमणकारियों के सतत घातक प्रहारों ने न केवल भारतीय राजाओं की शक्ति को ही क्षीण कर

दिया था, अपितु लस्त जनसामान्य को भी यह विश्वास दिलाने का प्रयत्न किया था कि उनके स्वामी जब अपनी ही रक्षा करने में असमर्थ है तो उनकी रक्षा क्या कर सकेंगे?''[1] इस प्रकार विदेशी आक्रान्ता ने यहाँ की धनसम्पदा लुटकर ले जा ही रहे थे लेकिन कुछ समय के बाद यहां की जनता पर अपना आधिपत्य जमाना प्रारंभ कर दिया था, जो बाद में दृढ़ हो गया। राजनैतिक पराभाव की प्रक्रिया में जनमानस की धार्मिक आस्था खंडित हो गयी। यहां के मन्दिरों को बाहरी आक्रान्ताओं ने ध्वस्थ कर दिया जिससे जनता में अपने देवताओं की दुर्बलता का बोध हुआ और अपनी शक्ति हीनता का भी आभास हुआ। इस प्रकार से जनता में ईश्वर और राजा दोनों के प्रति विश्वास खत्म होता गया। इस प्रकार यह धार्मिक दृष्टि से अनास्था का कला था। जिसके बाद निर्गुण संत कवियों ने एक नए मार्ग की कल्पना की, निराकार ईश्वर की लेकिन राजनैतिक दौर्बल्य तथा धार्मिक आस्था ने सामाजिक चेतना को भी विकृत कर दिया। बची–खुची व्यवस्था को ''ब्राह्मणवादी समाज–व्यवस्था ने समाज की विशाल जनसंख्या को अंत्यज या शूद्र कहकर उपेक्षित किया। ये शूद्र कहे जाने वाले मनुष्य दो प्रकार के कष्टों को भोग रहे थे एक कष्ट उनका था कि उन्हें उनके ही देशवासी उनसे घृणा करते हैं। यह मानसिक सन्ताप अन्य सब सन्तापों से बढ़कर था। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य आदि वर्णों के द्वारा उनकी न केवल घोर उपेक्षा होती थी, वरन् उनको अस्पृश्य भी समझा जाता था।''[2] जिसमें शूद्रों को समाज की अर्थव्यवस्था में कोई अधिकार प्राप्त नहीं था। सवर्णों की कृपा पर इनको जीना पड़ता था। दूसरी तरफ विदेशी आक्रमणकारियों का संतास भी इनको झेलना पड़ता था। इस प्रकार शूद्रों का जीवन नारकीय हो गया था। जिसमें जीवन जीने के लिए स्वस्थ तथा प्राथमिक परिस्थितियों तक का अभाव हो गया था। समाज के नियमों और आचरण की संहिताओं का निर्धारण ब्राह्मण करने लगे। अतएव सम्पूर्ण समाज व्यवस्था में ब्राह्मणों के हितों की सुरक्षा का अधिकाधिक ध्यान रखा जाता था और शूद्रों को अधिकतम उपेक्षा, दरिद्रता और निर्धान्ता में जीने के लिए मजबूर किया गया। इन्हीं सब परिस्थितियों के निमित्त संतों की विचारधारा का उदय हुआ जो तर्कों पर आधारित थी। यह विचारधारा भारतीय धर्म और दर्शन के खण्डन मंडन की ओर चली, उसी परम्परा का समाज के सामने एक नया आयाम आया। इन विचारों से प्रेरणा लेकर संत समाज ने भारतीय समाज में पुनर्जागरण पैदा कर कबीर और रैदास जैसे संतों ने समाज को मर्मशील बनाया सन्यासी व साधु नहीं। स्वयं इन कवियों के विषय में आलोचकों का कहना है कि ''संत समाज ने सामाजिक चेतना को जन–जन तक पहुँचाया व स्वयं किसी भी सामाजिक कुरीतियों को उन्होंने कभी स्वीकार नहीं किया और यथासंभव उन पर कुठाराघात किया। राजनैतिक अत्याचारों से जूझते–जूझते उन्होंने सिर तक कटा दिया, पर उसे झुकने नहीं दिया, आर्थिक दरिद्रता से अपने को उवारने के लिए कोई जीवन भर कपड़ा बुनता रहा तो कोई जूतियाँ ही गाँठता रहा, यह सच उनके जीवन की महानता को व्यक्त करता है, कुल मिलाकर समाज की किसी भी शक्ति के प्रहार से उन्होंने अपने व्यक्तित्व को विघटित नहीं होने दिया।''[3]

संतों की सफलता का यह बहुत बड़ा रहस्य है। किन्तु भारत का इतिहास प्रारंभ में आक्रमणकारी आक्रांताओं और लुटेरों के रूप में मुसलमानों के आक्रमणों से पहले आक्रान्ताओं का शिकार होता रहा। आक्रमणकारी जातियां मूलतः कबीलाई, खानाबदोश या आदिम जातियाँ थी जिनका न तो कोई दृढ़ सामाजिक संगठन था और न ही कोई सुव्यवस्थित और संघटित धर्म तथा संस्कृति। भारतीय समाज ने अपने स्वभाव में अत्यंत लचीलापन के नाते इन्हें आत्मसात किया और उनके देवी–देवताओं तथा आचार–विचार को भी स्वीकार किया जिससे समाज में जो अंत्यज व शूद्र समझी जाने वाली जातियों ने हिन्दू धर्म के अलावा अन्य धर्मों को स्वीकार किया। इसका सबसे बड़ा उदाहरण यह है कि आज भी दलित व पिछड़े समाज में घर के देवता के नाम पर मुस्लिम देवताओं की उपासना होती है। लेकिन इन कबिलाइयों ने भारतीय भौगोलिक स्थिति पर विजय प्राप्त करने के साथ बसने की भी लालसा लेकर आये। इनका उद्देश्य भारत में ईस्लाम धर्म की स्थापना करना था जो अन्य देशों में पूर्व में ही किया जा चुका था। लेकिन संत कवियों ने हिन्दू मुसलमान दोनों के बीच जो सामाजिक और धार्मिक बुराई थी, उसे जनता के समक्ष उद्घाटित करने का काम किया। इस प्रकार बहुत बड़े अंधविश्वास से जनता को बचाया और आम जनता को एक नया मार्ग प्रदान किया। जिसमें निराकर ब्रह्म की उपासना पर बल दिया, और लोगों को कर्म योगी बनाया भक्ति काल के सभी संतों ने गृहस्थ जीवन में रहकर समाज का मार्गदर्शन किया। मुस्लिम शासकों के विषय में आविद हुसैन ने ठीक ही लिखा है– ''अगर यूनानियों की तरह जो दूसरी शती ईसवी में बख्तर से आए थे अपने और अपनी संस्कृति के उद्गम स्थल से बहुत आगे तक उनका नाता टूटा रहता अथवा अगर उनकी संस्कृति सीरिया और हुणों की तरह आदिम होती, तो वे हिन्दू समाज में घुलमिलकर एकात्म हो जाते। लेकिन पहले तो वे एक समुन्नत अन्तर्राष्ट्रीय संस्कृति के प्रतिनिधि थे, दूसरे वे भारत से बाहर उस संस्कृति के केन्द्रों से इनमें इस्लामी जगत का राजनीतिक केन्द्र बगदाद भी शामिल था, जिसका महत्व आज नाममात्र रह गया है, बराबर सम्पर्क बनाए रहे। इन कारणों से उन्हें पूरी तरह भारतीय होने में काफी समय लगा।''[4] भारतीय जनमानस में ही नहीं समूचा भारतीय वातावरण पहली बार बूरी तरह विक्षुब्ध हो उठा था। इस्लाम तलवार के बल पर और समानता के अपने उदार आश्वासन के बल पर भी गुहर–गुहर कर उन आचार–भ्रष्ट तथा आश्रम–भ्रष्ट जातियों को जो न तो हिन्दू थी न मुसलमान अपने संरक्षण में बुला रही थी। अछूत और अंत्याज जातियों के लिए मुस्लिम धर्म के आ जाने से बहिष्कृत व्यक्ति अब असहाय नहीं था। इच्छा करते ही वह एक सुसंघटित समाज का सहारा पा सकता था। जिससे भारतीय समाज और भी विकृत हो रहा था, इस युगान्तरकारी घटना के चलते उत्तर में भक्ति आन्दोलन का उदय हुआ। ग्रियर्सन ने भक्ति आन्दोलन के विषय में कहा कि इस आन्दोलन ने एक बिजली की चमक के समान अचानक इस समस्त

अन्धकार के लिए प्रकाश पुंज का काम किया। इस प्रकाश पुंज ने दक्षिण से भक्ति के मार्ग को उत्तर भारत की ओर अग्रसर हुए, शास्त्र सम्मतविधि–विधानों को तोड़ते हुए शिव और विष्णु भक्ति का रास्ता सबके लिए सुलभ किया। यह कहा जा सकता है कि आगे चलकर ''रामानुज और उनकी शिष्य परम्परा के रामानन्द ने एक कदम और आगे बढ़कर परम्परागत वैष्णव धर्म की व्यवस्था पर चोट करते हुए भागवत भक्ति का अधिकार न केवल शूद्रों और चांडालों को माना, वरन मुसलमानों को भी अपनी शिष्य परम्परा में स्वीकार करते हुए एक सामान्य मानव धर्म के लिए रास्ता साफ कर दिया।''[5] यह स्पष्ट है कि रामानन्द वैष्णव भक्ति को उत्तर भारत में लाए और अपना कार्यक्षेत्र भी उत्तर भारत को बनाया जहां भारतीय समाज सामाजिक धार्मिक रूप से विकसित हो रहा था उसके लिए धर्म के रास्ते खुल गये। रामानंद ने कहा– 'जाति पांति पूछे नंहि कोई हरिको भजे सो हरि का होई।' जिसका परिणाम यह हुआ कि उपेक्षित, पीड़ित तथा पद दलित समझी जाने वाली जातियां जो मुस्लिम धर्मस्वीकार कर रही थी वह पुनः भारतीय धर्म को अपनाने लगी। जिससे कि अंत्यज शूद्र और मुसलमान संतों की श्रृंखला सामने आयी, जिससे भारतीय संस्कृति का अखिल भारतीय आन्दोलन शुरू हुआ। यह भले ही कुछ सन्तों और महात्माओं को पैदा किया हो लेकिन अपनी स्वतंत्र वैचारिकी से छूट गया। इन सन्तों के केन्द्र में राम ही रहे चाहे वह निराकार के रूप में हो या साकार रूप में दलित शोषित जातियों को जीने का अवसर मिला। वह भी बाहरी मुस्लिम आक्रमणकारियों के डर से, न कि स्वयं भारतीय धर्म के संरक्षक ब्राह्मणों के द्वारा।हां यह कहा जा सकता है कि ''जन साधारण पर जितना व्यापक प्रभाव हुआ उतना किसी अन्य आन्दोलन का नहीं पहली बार शूद्रों ने अपने संत पैदा किए। अपना साहित्य और अपने गीत सृजित किए। कबीर, रैदास, नाभा, सेन, नाई आदि महापुरुषों ने ईश्वर के नाम पर जातिवाद के विरूद्ध आवाज बुलंद की। समाज में व्याप्त स्वार्थवादी वर्ग के विरूद्ध नया विचारवाद अंवश्यभावी था।''[6] इस भक्ति आन्दोलन से सन्त की सामाजिक चेतना ने उच्च वर्ग का अहंकार, वर्ण, दंभ तथा समाज धर्म और नीति सम्बधी सभी नियम तथा कानून कमजोर पड़ते गये। जिसे सन्तों ने अपने तर्क के बल पर समाज को एक नई दिशा दी। इन सन्तों ने हिन्दू, मुसलमान धर्मों व समाज में जो असमानता थी सब पर अपनी वाणी के द्वारा चोट की। जिसका परिणाम आज आधुनिक युग तक दिखाई पड़ता है। संत आन्दोलन की देन है कि समाज में मानवतावाद को महत्व मिला। आज कविता के केन्द्र में उच्च वर्ग का नायक नहीं दलित, शोषित, मजदूर कविता के केन्द्र में बना हुआ है। वही सामाजिक चेतना निरन्तर काल से चलती चली आ रही है। अपने नये–नये रूपों में संत कवियों ने समाज सुधार हिन्दू–मुस्लिम एकता पर बदल दिया। रूढ़िवादी परम्परा का विरोध किया संत कवि क्रान्तिकारी विद्रोही थे। लेकिन समझौता परस्ती, किसी प्रकार के लुभावने, आश्रय के अहेतुक संरक्षण में नहीं आये। सन्त कवियों ने अपने अन्दर के विद्रोह ज्वाला को जलाए रखा, जिसके नाते सन्त कवियों में कबीर–कबीर ही रहे और आजीवन सुविधाभोगियों, सत्ताधारियों तथा समाज और धर्म प्रभुओं की आंख का कांटा बने रहे, उनकी अपनी एक पहचान थी।

उसी प्रकार संत कवियों में संत रैदास भी हुए जो ''निर्गुण और निराकार में विश्वासी रैदास साकार में विश्वास जतलाने वाले तथाकथित समाज के अधिकारी ब्राह्मणों की आडम्बर एवं आवरण–प्रियता को न सह सके। रैदास ने कबीर की तरह ब्राह्मणवादी धर्म पर तीखे प्रहार तो नहीं किया लेकिन जिन मर्मस्पर्शी मधुर व्यंग्यों का उन्होंने आश्रय लिया वे सम्भवतः कबीर के आक्रामक प्रहारों से भी अधिक घातक सिद्ध हुए। आडम्बर परायण पुजारियों की सारी पूजा ही व्यर्थ है क्योंकि वह पवित्र चेतना से अभिमंडित नहीं। इस पूजा में जिस दूध का प्रयोग करते हैं, उसे तो थन चुंसते हुए बछड़ा ही जूठा कर चुका है। फूल को भौंरे ने ही उच्छिष्ट कर दिया है। पानी को मछली ने बिगाड़ दिया है। अब किस पवित्र फूल एवं सामग्री के अभाव में भगवान की पूजा कैसे की जाए।''[7] संत रैदाज की कहते हैं–

''दूध त बछरै थनहु विटरिओ
फूलु भवरि जलु मीनि बिगारिओ।
माई गोविन्द पूजा कहा लै चरावउ
अवरू न फूलू अनूप न पावउ।।रहाउ।।''[8]

इस प्रकार रैदास ने पूजा की औपचारिकता का कितना सहज और स्वाभाविक विरोध कर पुजारी को सचेत किया कि औपचारिकताओं का नहीं मूल भाव का महत्व है। जैसे भगवान पवित्र है वैसे ही पवित्र ह्रदय की भक्ति को उन्होंने बिना किसी औपचारिकता के आधार पर समाज में चेतना जागृत की। भक्ति आन्दोलन से ही सन्त काव्य का उदय हुआ है, यदि भक्ति आन्दोलन को इस प्रकार देखे तो पाएंगे कि पूरा का पूरा भक्ति आन्दोलन साम्प्रदायिकता और वर्ण–व्यवस्था का विरोधी है। इसकी मूल चेतना उस सामान्य मनुष्य की पक्षधर है जो ''ब्राह्मणवाद के संरक्षक सामन्तों और इस्लाम के कट्टर मुल्ला–मौलवियों द्वारा समान रूप से शोषित और पीड़ित हैं। भक्ति आन्दोलन के परस्पर विरोधी से लगने वाले दोनों खेमों को यदि गौर से देखें तो पाएंगे कि एक (सगुण) का विरोध परम्परागत उदारता की सीमा के है, तो दूसरा निर्गुण पूर्णतः क्रान्तिकारी है। परिवर्तन दोनों चाहते है मुक्ति की छटपटाहट दोनों में है किन्तु एक की मुक्ति चेतना व्यवस्था में सुधार देखना चाहती है, जबकि दूसरा आमूल–चूल परिवर्तन कर नयी व्यवस्था गढ़ना चाहता है। विचारधारा में सभी धर्म और सम्प्रदाय अलग–अलग है पर व्यक्ति के मामले में सभी एक हैं।''[9]भक्ति के मामलें में दोनों एक जरूर थे लेकिन संत कवियों ने मध्ययुगीन सामाजिक चेतना को एक ऐसी नवीन दिशा दी जिससे न केवल वह युग ही आलोकित हुआ अपितु परवर्ती भारतीय समाज आज भी प्रभावित होता चला आ रहा है। ''संत रैदास ने समाज के वंचित तबकों को आर्थिक सम्पन्नता का भी अनावश्यक महत्व न देकर उचित साधनों से आजीविका अर्जित करने के महत्व को प्रतिपादित किया जिससे समाज में सम्भ्रान्त नागरिक के मूल्य ही बदल दिये। उस युग के सर्वाधिक मान्य व्यक्ति वे ही बन सके, जिनके जीवन वैयक्तिक आचरण की पवित्रता, सामाजिक

लोककल्याण की भावना धार्मिक प्रेमपरायण भक्ति तथा आध्यात्मिक एकात्मिक साधना से परिपूर्ण हो गया। संत कवियों की यह सामाजिक क्रान्ति अपने युग को उनकी अविस्मरणीय देन है।''[10]

अध्ययन का उद्देश्य

प्रस्तुत शोधपत्र में हिन्दी सन्त कवियों की सामाजिक चेतना पर प्रकाश डालने का प्रयास किया गया है।

निष्कर्ष

स्पष्ट रूप से कहा जा सकता है कि संत कवि एक ऐसे धर्म और समाज की स्थापना करना चाहते थे, जिसमें न कोई हिन्दू हो न मुसलमान, न कोई मौलवी हो न पुरोहित, न कोई शेख हो न ब्राह्मण, सब मनुष्य हो, मानवता के कल्याण की भावना हो, और संत काव्य की सामाजिक चेतना केवल संत भक्त कवियों की साधना वैयक्तिक एवं एकान्तिक साधना नहीं थी वह समाज को दृष्टि में रखकर चलते थे। समदृष्टि भेदभाव का नाश और एकता का प्रचार इस शाखा के आवश्यक अंग थे। साधना पक्ष की दृष्टि से संतों ने भक्ति और योग दोनों पर बल दिया है। धार्मिक पक्ष को सर्व धर्म समन्वय का सार तत्व ही संत मत है। सन्त मत ही संत काव्य की सामाजिक चेतना है।

सन्दर्भ ग्रंथ सूची

1. *भारतीय साहित्य के निर्माता रैदास, लेखक धर्मपाल मैनी, साहित्य अकादमी प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रकाशन वर्ष 2015, पृ.सं.7*
2. *वही, पृ.सं.8*
3. *वही, पृ.सं.11*
4. *भक्ति आन्दोलन और भक्तिकाव्य, शिवकुमार अभिनव प्रकाशक, इलाहाबाद, प्रकाशन वर्ष 2005, पृ.सं.53*
5. *वही, पृ.सं.55*
6. *वही, पृ.सं.55*
7. *भारतीय साहित्य के निर्माता रैदास, धर्मपाल मैनी साहित्य अकादमी प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रकाशन वर्ष 2015, पृ.सं.39*
8. *वही, पृ.सं.39*
9. *दलित साहित्य का समाजशास्त्र, हरिनारायण ठाकुर, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रकाशन वर्ष 2009, पृ.सं. 243*
10. *भारतीय साहित्य के निर्माता रैदास, लेखक धर्मपाल मैनी, साहित्य अकादमी प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रकाशन वर्ष 2015, पृ.सं.41*